अनुष्ठान

☆ इतिहास कृतज्ञ है कि युद्ध और हिंसा के कालिमा की गहन राह पर भगवान महावीर जैसे महान तीर्थंकरों का अहिंसा वर्धक जीवन स्वर्ण की सी प्रभा लेकर मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

☆ विश्व कृतज्ञ है कि विश्व की जनता मे समभाव, भाई चारा, अहिंसा और सयम का प्रतिमान उपस्थित करने वाले भगवान महावीर भी विश्व की जनता मे से ही एक थे।

☆ भारत कृतज्ञ है कि उसकी गोदी मे ऐसा महान उज्ज्वल सितारा ज्ञान का पुंजी भूत होकर उतरा, उसकी माटी मे खेला, उसकी नदियों का जल पिया और अपनी महानता से भारत को महान बना गया।

☆ प्रातः स्मरणीय महावीर स्वामी भगवान वर्द्धमान का जीवन चरित्र भक्तों के लिये अमृत है, भारतीय जनता के लिए सजीवन है और विश्व की भटकती जनता के लिये जगमगाता प्रकाश स्तम्भ है।

☆ पच्चीस शताब्दी पूर्व भारत की धरती को इस महान तीर्थंकर का स्पर्श मिला था। आज जब सारे विश्व मे इस महान तीर्थंकर के निर्वाण की पच्चीसवीं शताब्दी समारोह' मनाया जायगा तो उस कार्य मे छोटा सा अनुष्ठान है इस पुस्तक का प्रकाशन।

—सम्पादक

भारत की ही पुण्य भूमि में

धर्म का आडम्बर हो या वासना का कुठाराघात सौ बार
हिंसा की काली करतूतें हो या समाज मे असमानता
का बोध भारत को गर्व है कि जब विश्व के
राष्ट्र मृत्यु के नाम से ही चिन्तित हो जाते थे
क्षणिक राग रंग के लिए माँ अपने ही
बेटे की प्रेमिका बनने मे भी नही
हिचकती थी। मनोरंजन के
नाम पर खोपडी की
मशालें जलाकर रथो
की दौड की जाती थी
और नृशंसता का
नंगा नाच किया
जाता था।
तब
भारत की ही पुण्य भूमि मे
भारत की मिट्टी को चन्दन का सा गौरव
प्रदान करने के लिये पहली बार प्राणीमात्र
मे ममता, दया, समता और अहिंसा का
भाव उपस्थित करने के लिये, हिंसा को अहिंसा
मे जीतने के लिये, प्राणीमात्र को ईश्वर तक पहुँ-
चने के लिये ही नही स्वयं परमद प्राप्त रहने का अह-
सास कराने वाले भगवान महावीर वर्द्धमान २४ वें तीर्थ
कर के रूप मे अवतरित हुये थे उनकी पुण्य जीवन
गाथा दीनहीन मे नवजीवन जगाती और
कामुक जीवों मे संयम और
निष्ठा पैदा कर देती है।
उनकी स्मृति का
यशोगान करने
वाले तीर्थ महान
हो गये, मधुर
हो गये।

—(कुण्डलपुर के राजकुमार से साभार)

तपःप्रधान संस्कृति के उज्जवल प्रतीक—

भगवान महावीर

(डा० वासुदेवशरण एम० ए०, पी० एच० डी०,)

भगवान महावीर तपःप्रधान संस्कृति के उज्जवल प्रतीक हैं। भोगों से भरे हुये इस संसार में एक ऐसी स्थिति भी सम्भव है जिसमें मनुष्य का अडिग मन निरन्तर संयम और प्रकाश के सान्निध्य में रहता हो—इस सत्य की विश्वसनीय प्रयोगशाला भगवान महावीर का जीवन है। वर्द्धमान महावीर नितान्त ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। माता पिता के द्वारा उन्हें भी हाड़ मांस का शरीर प्राप्त हुआ था। अन्य मानवों की भांति वे भी कच्चा दूध पीकर बड़े थे, किन्तु उनका उदात्त मन अलौकिक था। तम और ज्योति, सत्य और अनृत के संघर्ष में एक बार जो मार्ग उन्होंने स्वीकार किया, उस पर दृढ़ता से पैर रखकर हम उन्हें निरन्तर आगे बढ़ते हुये देखते हैं। उन्होंने अपने मन को अखण्ड ब्रह्मचर्य की आंच में जैसा तपाया था उसकी तुलना में रखने के लिये अन्य उदाहरण कम ही मिलेंगे। जिस आध्यात्म केन्द्र में इस प्रकार की सिद्धि प्राप्त की जाती है उसकी धारायें देश और काल में अपना निस्सीम प्रभाव डालती हैं। महावीर भगवान का वह प्रभाव आज भी अमर है। आध्यात्म के क्षेत्र में मनुष्य कैसा साम्राज्य निर्मित कर सकता है, उस मार्ग में कितनी दूर तक वह अपनी जन्म सिद्धि महिमा का अधिकारी बन सकता है, इसका ज्ञान हमें भगवान महावीर के जीवन से प्राप्त होता है। बार-बार हमारा मन उनकी [illegible] दृढ़ता से प्रभावित होता है। कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े रहकर शरीर के कष्ट दुःखों से निरपेक्ष रहते हुये उन्होंने [illegible] के अत्यन्त उत्कृष्ट आदर्श को प्रत्यक्ष दिखाया था। निर्बल मनुष्य का शक्ति [illegible]

आचार्यकल्प श्री १०८ मुनि श्री सुमति सागरजी महाराज के संघ सहित चिरगाँव (झाँसी) आगमन पर

महामन्त्र का पाठ

'णमोकार मन्त्र ही महामन्त्र'

णमोकार मन्त्र ही महामन्त्र, निज पद का ज्ञान कराता है।
नित जपो शुद्ध मन-वच-तन से, मनवांछित फल का दाता है।
णमोकार मन्त्र ही महामन्त्र ॥१॥

पहिला पद श्री अरिहंताण, यह आत्म-ज्योति जगाता है।
यह समोशरण की रचना का, भव्यों को याद दिलाता है।
णमोकार मन्त्र ही महामन्त्र ॥२॥

दूजा-पद श्री सिद्धाण है, यह आत्म-शक्ति बढ़ाता है।
इससे मन होता है निर्मल, अनुभव का ज्ञान कराता है।
णमोकार मन्त्र ही महामन्त्र ॥३॥

तीजा पद श्री आयरियाण, दीक्षा में भाव जगाता है।
दुख से छुटकारा शीघ्र मिले, जिन-मत का ज्ञान बढ़ाता है।
णमोकार मन्त्र ही महामन्त्र ॥४॥

चौथा पद श्री उवज्झायाण, यह जैन-धर्म चमकाता है।
कर्मास्रव को ढीला करता यह सम्यक्-ज्ञान कराता है।
णमोकार मन्त्र ही महामन्त्र ।

पंचम पद श्री सव्व साहूणं, यह जैन तत्त्व सिखलाता है।
दिखलाता है यह ऊँचा पद, सङ्कट में शीघ्र बचाता है।
णमोकार मन्त्र ही महामन्त्र ।

महामानव महावीर

भगवान महावीर हमारे जैसे ही एक सामान्य पुरुष थे। वे न तो किसी देवी अथवा दैवी शक्ति में विश्वास करते थे, और न ही उन्होंने स्वयं को किसी दैवी शक्ति का अवतार या अंश घोषित किया। वे मानव देह की, मनुष्य मन की, असीम शक्ति में विश्वास करते थे। उसी का सदुपयोग कर उन्होंने तीर्थंकर पद प्राप्त किया और उसके सदुपयोग का ही निरन्तर उपदेश देते रहे। मनुष्य जन्म का सदुपयोग ही उनका जीवन दर्शन था तथा उनके समस्त उपदेश इसी दर्शन पर आधारित है।

अहिंसा तत्व—वैशाली के महान गणराज्य के नायक श्री सिद्धार्थ के पुत्र महावीर ने यह अनुभव किया कि संसार में जो शक्तिशाली होता है, वह निर्बल के सुख और साधन, एक डाकू की भांति, छीन लेता है। यह अपहरण करने की वृत्ति अपने सुख के प्रति मोह से उत्पन्न होती है। प्रत्येक मनुष्य को अपना सुख और अपनी सुविधा इतनी कीमती प्रतीत होती है कि उसकी दृष्टि में दूसरे अनेक जीवधारियों की सुविधा का कोई मूल्य ही नहीं होता। अतः प्रत्येक मनुष्य यह प्रमाणित करने का प्रयास करता है कि जीव-जीव का भक्षक है। 'जीवो जीवस्य जीवनम्।' सुख की मिथ्या भावना और अनुचित वृत्ति के ही कारण व्यक्तियों और समूहों में अन्तर बढ़ता है, शत्रुता की नींव बढ़ती है और उसके परिणाम-स्वरूप निर्बल बलवान होकर बदला लेने का निश्चय तथा प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार हिंसा और प्रतिहिंसा का ऐसा मलिन वातावरण तैयार हो जाता है कि लोग संसार के सुखों को नर्क के दुखों में बदल देते हैं। हिंसा के इस भयावह स्वरूप से [illegible] महावीर ने अहिंसा तत्व में ही समस्त धर्मों का, समस्त सत्कर्मों का, प्राणी मात्र की शान्ति का मूल देखा। उन्होंने स्पष्ट अनुभव किया कि

जब सभी प्राणी सुख चाहते है, सभी को शारीरिक व मानसिक कष्ट अहितकर है तो हमारा यह कर्तव्य हो जाता है किसी भी प्राणी को चाहे वह कोई भी हो, कैसा भी हो, किसी भी प्रकार का शारीरिक या मानसिक कष्ट न पहुचावें, अपितु अपनी सामर्थ्य का उपयोग उनको सुख पहुँचाने के लिये करें। दूसरे को दुख पहुँचाने की क्रिया, उसके अनिष्ठ का विचार मात्र ही हिंसा है। हिंसात्मक क्रिया प्रतिशोध की जननी है और यही ससार के समस्त सघर्षों को प्रश्रय देती है, जिससे न केवल व्यक्तिगत, बल्कि सामाजिक, नैतिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन भी सघर्ष मय होता है और मनुष्य मात्र की शक्ति सामान्य प्रगति मे न लगकर रक्षा व प्रति - रक्षा के उपायो मे न लगकर, विनाशकारी कार्यो के निर्माण मे लगती है।

मानसिक अहिंसा—जिस प्रकार शारीरिक व मानसिक क्रियाओ के क्षेत्र मे अहिंसात्मक भावना अपेक्षित है, उसी प्रकार अनेकान्त भावना विचारो के क्षेत्र मे आवश्यक है। विचारो के निर्माण, आदान-प्रदान मे उदारता व सहिष्णुता का क्रियात्मकरूप ही अनेकान्त है। प्रत्येक व्यक्ति की विचार धारा एक सी नही होती। वस्तु स्वरूप सबको एक-सा दिखाई नही देता। प्रत्येक वस्तु अनेक गुण धर्मवाली है। यद्यपि सत्य एक है किन्तु मनुष्य के पूर्ण ज्ञानी न होने के कारण सम्पूर्ण सत्य की उपलब्धि असम्भव है। सत्य के अनेक पक्ष होते है और विभिन्न व्यक्तियो को विभिन्न पक्षो की उपलब्धि होती है, जो न एकान्त सत्य है और न एक दम असत्य। अत विभिन्न विचारो के प्रति उदार भाव रखना, उन्हे समझने की सामर्थ्य व उनका समन्वय करने की शक्ति विकास आवश्यक है।

अपरिग्रह—अपरिग्रहवाद भी, अहिंसा और अनेकान्त वाद की भाँति, जीवन को सुखी बनाने के लिये एक सिद्धान्त प्रयोग है। पहले मनुष्य का जीवन सरल एव सादा था। उसमे सग्रह-वृत्ति का नितान्त अभाव था। लेकिन धीरे-धीरे मानव-समाज मे सग्रह वृत्ति

आयी। मनुष्य ने अत्यधिक धनोपार्जन व धन संचय को ही अपना एक मात्र लक्ष्य बना लिया और इस लक्ष्य के प्राप्त्यार्थ सभी उचित और अनुचित उपायों को अपनाने लगा। परिणाम में संघर्ष हुआ। जीवनोपयोगी साधनों के विस्तार और संचय की प्रतिद्वन्द्विता यहाँ तक बढ़ी कि मनुष्य-मनुष्य को गुलाम तक बनाने लगा, समर्थ राष्ट्रों ने दूसरे असमर्थ्य देशों पर अपना आधिपत्य फैलाया। अतः संसार को विनाशमय संघर्ष में बचाने के लिये अपरिग्रह वृत्ति - व्यक्तिगत सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्तर का होना नितान्त आवश्यक है।

सामाजिक क्रान्ति—जिस प्रकार भगवान महावीर ने दर्शन के क्षेत्र में, विचारों के क्षेत्र में क्रान्ति की उसी प्रकार उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में भी क्रान्ति का सृजन किया। वर्ण-व्यवस्था पर उन्होंने उग्र प्रहार किये, उन्होंने नारी एवं शूद्र को सम्मान और महत्व का स्थान प्रदान किया।

(दैनिक जागरण, कानपुर से साभार)

श्रम से आलस्य दूर रहता है। संयम से इन्द्रियों की दुर्बलता दूर होती है, शक्ति आती है। विराग से राग की निवृत्ति होती है, अनेकों विकार नष्ट हो जाते हैं और विवेक से जीवन यात्रा अन्धकार रहित होकर प्रकाशमय होने लगती है। इस क्रम से जीवन का जो परम लक्ष्य है उसकी प्राप्ति हो जाती है।

(श्रीमद-भागवत)

卐 श्री वीतरागायनमः 卐

ओम जय अरहनाण स्वामी जय अरहनाण ।
भाव भक्ति से नित प्रति प्रणमो सिद्धाण ॥ ओम जय ॥
दर्शन ज्ञान अनन्ता शक्ती के धारी स्वामी शक्ति के धारी ।
यथा ख्यात है जिसमे कर्म शत्रु हारी ॥ ओम जय ॥
हे सर्वज्ञ सर्व दर्शी सुख अनन्त पाये स्वामी सुख अनन्त पाये ।
अगुरु लघुरु अमूर्ती अव्यय कहलाये ॥ ओम जय ॥
णमो आयरीयाण छत्तीस गुणधारक स्वामी छत्तीस गुणधारक ।
जैन धर्म के नेता सघ के सचालक ॥ ओम जय ॥
णमो उवज्झायाण चरण शरण ज्ञाता स्वामी चरण शरण ज्ञाता ।
अग उपाग पढावत ज्ञान दान दाता ॥ ओम जय ॥
णमो लोए सव्व साहुण ममता मद हारी स्वामी ममता मद हारी ।
सत्य अहिंसा चौर्य ब्रह्मचर्य धारी ॥ ओम जय ॥
ब्रह्मचारी करे शुद्ध मन ध्यान धरे स्वामी शुद्ध मन ध्यान धरे ।
पावन पच परमेष्ठी प्रत्याख्यान करे ॥ ओम जय ॥

दान, नियम, सत्य आदि का अन्तिम फल यही है कि मन एकाग्र हो जाय। मन का शान्त समाधिस्त हो जाना ही परम योग है। (श्रीमदभागवत)

बुन्देल वसुन्धरा का अद्‌भुत सत्य—
'दिव्य देवगण'
(—वृजकिशोर जैन एम ए चिरगाँव)

"देख देवगढ लगता है, यह देवो की माया है ,
या उस कलाकार पर होगी, देवो की छाया है ।
जिसके स्पर्श मात्र से ही, पत्थर गल जाता होगा ,
या फिर किसी शक्ति के द्वारा पत्थर ढल जाता होगा ।।"
—हजारीलाल जैन 'काका'

अब से ५० वर्ष पूर्व तक और की तो बात क्या ? इस स्थान के आस-पास के जैनियो को भी इस बात का पता नही था कि उनकी ही बगल मे सघन वन की चादर ओढे हुए मूर्तिकला, सस्कृति और स्थापत्य की दृष्टि से जीवित वैभव 'अद्‌भुत सत्य' बुन्देल वसुन्धरा का ही अग देवगढ के रूप मे छिपा है, जहाँ पर लगभग १५ सौ वर्षो तक "अहिंसा परमोधर्म " की ध्वनि गूंजी ।

'देवगढ' झांसी जिले के अन्तर्गत सेन्ट्रल रेलवे के ललितपुर स्टेशन से लगभग ३३ कि०मी० दूर एक पर्वत की परिधि को घेरे हुए कोटद्वार है । इसके बाद दो जीर्ण कोट द्वार और भी मिलते हैं । यह दोनो कोट जैन मन्दिरो को घेर हुए है । इनके अन्दर देवालय होने से इसे देवगढ कहा जाने लगा है ।

किले की दीवार जिसकी मोटाई १५ फीट की है, बिना चूना सीमेंट के केवल पाषाण से बनी हुई है । ऊँचाई भी २० फीट है । उत्तर-पश्चिम कौने से एक दीवार २१ फीट मोटी है, जो ६०० फीट तक पहाडी के किनारे तक चली गई है ।

देवगढ का यह स्थान कितना सुरम्य और चित्ताकर्षक है, इसे बतलाने की आवश्यकता नही । वेत्रवती नदी के किनारे-किनारे दाहिनी

[illegible] देखी प्रतिमायें, लगती मोम जड़ा है।
छूकर देखो तो, पत्थर लगे गढ़ा है॥
(देवगढ़-स्थापत्य दर्शन)

ओर मैदान अत्यन्त ढालू हो गया है। पहाड की विकट घाटी मे उक्त सरिता सहसा मुड जाती है। यहाँ की प्राकृतिक सुषमा और कलात्मक सौन्दर्य दोनो ही अपनी अनुपम छटा प्रदर्शित करते हैं। जिसके दर्शन करके राष्ट्रकवि श्रद्धेय कविवर श्रीमैथिलीशरण जी गुप्त ने 'सिद्धराज' मे लिखा है—

'वेत्रवती तीर पर, नीर धन्य जिसका,
गंगा सी पुनीत जो सहेली यमुना की है;
रखती है किन्तु छटा दोनो से निराली जो,
जिसमे प्रवाह है, प्रपात और ह्रद हैं।
काट के पहाड़, मार्ग जिसने बनाये है,
'देवगढ़' तुल्य तीर्थ, जिसके किनारे है।'

'देवगढ मे दर्शको को वैभव की असारता के स्पष्ट दर्शन भी होते है, जो स्पष्ट सूचित कर रहे हैं कि 'हे पामर नर! तू वैभव के अहङ्कार मे इतना क्यो इठला रहा है? एक समय था, जब हम भी गर्व मे इठला रहे थे। उस समय हमे भावी परिवर्तनो का कोई आभास नही था, किन्तु दुर्दैव के कारण हमारी यह अवनत अवस्था हुई है। अत तू अब भी समझ और सावधान हो, अपनी आत्मनिधि को पहिचान और इन्द्रिय जन्य क्षणिक भोगो मे अपना अस्तित्व मत खो, तू तो सच्चिदानन्द है।'

विन्ध्य पर्वत माला की सघन वनाच्छादित सुरम्य उपस्थली मे यह पुण्य क्षेत्र, जीवनदायिनी सलिला वेत्रवती से सटी हुई डेढ-दो मील लम्बी पहाडी के ऊपर एक चौकोर लम्बे मैदान के एक भाग मे फैला हुआ पग-पग पर अनुपन सास्कृतिक जीवन-कला की विभूतियो के मनमोहक दृश्य दिखाता हुआ एक अनन्त आनन्दमय शक्ति की ओर सकेत करता है। जिसमे तल्लीन होकर एक बार दर्शक गर्व के साथ इस क्षेत्र के उत्थान और पतन के दृश्य एव शिलालेख देखकर हर्ष-

विषाद, सुख-दुःख, मोह-मत्सर, काम आदि के संस्कार रूपी बन्धनो से मुक्त होकर प्रकृति की गोद मे विलीन-सा हो जाता है। और अपने सारे अहङ्कारमय ऐहिक अस्तित्व को भूलकर अपने आपको एक न्यूनतम से न्यूनतम रजकण से भी तुच्छ पाता है।

प्रशान्त मूर्तियाँ, वेदिका, स्तभ, तोरण, दीवारें और अन्य कलात्मक अलकरण, जो यशस्वी शिल्पियो द्वारा चमत्कारपूर्ण सामग्री से निर्मित की गई है, वह अपनी मूक प्रेरणा द्वारा भिन्न-भिन्न विचार मुद्राओ मे आध्यात्मिक जीवन की झाकी का सन्देश प्रस्तुत करती हैं। कहीं चमत्कारिक मूर्ति निर्माण-कला के छिटकते हुए सौन्दर्य से देदीप्यमान प्रतीको, तीर्थंकर पार्श्वनाथ की विशालकाय मूर्तियाँ और अगणित अर्हन्तो की प्रेरक विचार मुद्राओ वाले प्रतिबिम्ब उस वनस्थली की स्वच्छ शान्ति के मृदु स्वर मे आनन्द विभोर दिखाई देते हैं, कहीं चक्रेश्वरी, पद्मावती, ज्वालामालिनी, सरस्वती आदि जिन शासन की रक्षिका देवियो की मुद्रायें, अद्भुत भाव प्रेरक अनेक देवियो के अलकृत अवयव अपनी भावभगिमा से मानो सुषमा ही उडेल रहे है।

गुप्तकालीन मन्दिर

किले के पश्चिमी कोने पर वराह का एक प्राचीन मन्दिर खण्डितावस्था मे मौजूद है। इसके निर्माण के सम्बन्ध मे निश्चयत कुछ नही कहा जा सकता है। नीचे के मैदान मे गुप्तकालीन विष्णु मन्दिर बना हुआ है। यह पूर्णरूप मे सुरक्षित है। भारतीय कलाविद् इसके कारण ही देवगढ से परिचित है। यह मन्दिर गुप्तकाल के बाद किसी समय बना है। कहा जाता है कि गुप्तकाल मे मन्दिरो के शिखर नही बनाये जाते थे। परन्तु इसमे शिखर होने के चिन्ह मौजूद है, मालूम होता है कि इसका शिखर खण्डित हो गया है। यह मन्दिर विशाल पाषाण खण्डो से बना है व अत्यन्त कलापूर्ण और भव्य है। इस मन्दिर की कला के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान 'स्मिथ

महोदय' कहते हैं कि, "देवगढ मे गुप्तकाल का सबसे अधिक महत्वपूर्ण और आकर्षक स्थापत्य है तो वह देवगढ का पत्थर का बना हुआ एक छोटा-सा मन्दिर है। यह ईसा की पाँचवी अथवा छठी शताब्दी का बना है। इस मन्दिर की दीवारो पर जो प्रस्तर फलक लगे है, उनमे भारतीय मूर्तिकला के कुछ बहुत ही बढिया नमूने अङ्कित है।'

इस मन्दिर की खुदाई मे जो मूर्तियाँ मिली हैं, उनमे से एक मे पञ्चवटी का दृश्य अंकित है, जहाँ लक्ष्मण ने रावण की बहिन शूर्पणखा की नाक काटी थी। अन्य एक पाषाण मे राम और सुग्रीव के परस्पर मिलने का वह अपूर्व दृश्य अंकित है। एक अन्य पत्थर मे राम का शबरी के आश्रम मे ले जाने का दृश्य दिखाया गया है। इसी तरह के अन्य दृश्य भी रहे होगे। रामायण की कथा के यह दृश्य अन्यत्र मेरे देखने मे नही आये। यही पर नारायण की मूर्ति है। एक पत्थर मे गजेन्द्र मोक्ष का दृश्य भी उत्कीर्णित है। दक्षिण की दीवार मे शेषशायी विष्णु की मूर्ति है। काफी बडे आकार के लाल पत्थर मे यह मूर्ति खोदी गई है। इससे यह मन्दिर भी अपना विशेष महत्व रखता है।

जैन मन्दिर और मूर्तिकला

देवगढ मे इस समय ३१ जैन मन्दिर हैं। इसमे से न० ४ के मन्दिर मे तीर्थंकर की माता सोती हुई स्वप्नावस्था मे विचारमग्न मुद्रा मे दिखलाई गई है। न० ५ का मन्दिर सहस्र कूट चैत्यालय है। जिसकी कलापूर्ण मूर्तियाँ अपूर्व दृश्य दिखलाती है। इस मन्दिर के चारो ओर १००८ प्रतिमायें खुदी हुई है। मन्दिर के बाहर स० ११२० का लेख भी उत्कीर्णित है, जो सम्भवत इस मन्दिर के निर्माण काल का द्योतक है। न० ११ के मन्दिर मे दो शिलाओ पर चौबीस तीर्थंकरो की बारह-बारह प्रतिमायें अंकित है। ये सभी प्रतिमायें प्रशान्त मुद्रा को लिए हुए हैं।

इन सभी मन्दिरो मे सबसे विशाल मन्दिर न० १२ है, जो 'शान्तिनाथ मन्दिर' के नाम से प्रसिद्ध है। जिसके चारो ओर अनेक

उस परमात्मा के उच्च आदर्श को पाने के लिये सिलसिला अपने सामने रखते है।

यह ठीक है कि एक पदार्थ का गुण दूसरे पदार्थ मे नहीं आता किन्तु यह भी गलत नही कि दूसरे पदार्थ के निमित्त से अपने गुणो मे कमीवेशी अवश्य हो जाती है। तदनुसार मूर्ति हमको वीतरागता नही देती किन्तु वीतराग प्रतिमा की उपासना से उस वीतराग मूर्ति वाले परमात्मा का चिन्तवन करने से हमारी आत्मा मे वीतराग (रागद्वेष रहित) भाव उत्पन्न हो जाता है।

योगाभ्यास का आदर्श जैन मूर्ति है, जिसके दर्शन से 'संसार तुच्छ व मोक्ष श्रेष्ठ है' ऐसा भाव हो जाता है।

अन्त मे स्वयम्भूस्तोत्र का श्लोक भी यही बताता है —

'न' पूजयार्थस्त्वार्य वीतरागे,
न निन्दया नाथविवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः,
पुनाति चित दुरिताजनेभ्यः॥
(स्वयम्भूस्तोत्र)

इसका भावार्थ है, भगवन ! आप वीतराग है, आपको हमारी पूजा से कोई सरोकार नहीं, आप वैर रहित है, आपको हमारी निन्दा से कोई [illegible] नहीं [illegible] भी आपके पवित्र गुणो का स्मरण हमारे मन को पाप के मैलो से [illegible] करता है।

वीतरागता और शान्ति [illegible] गुण [illegible] जीव मे पाये जाते है [illegible] वीतराग [illegible] नही है किन्तु वीतराग की द्योतक है [illegible] शान्ति प्राप्त की जा सकती है जैसे कि [illegible] किया जाता है।

निर्मोही राजा और राजकुमार

मोह-ममता ही संसार के बन्धन का कारण है। जो कुटुम्ब में रहते हुए भी उससे मोह ममता नहीं रखते। स्व—पर का कल्याण करते हैं ऐसे नररत्न धन्य हैं।

ऐसे ही एक निर्मोही राजा और उसके राजकुमार की कहानी सुनने तथा ध्यान देने योग्य है। किसी नगर में एक ज्ञानी राजा रहता था। उसका राजकुमार वन में एक साधु के पास पहुँचा और हाथ जोड़कर निवेदन किया—'हे महाराज मुझे गृहस्थी से वैराग्य हुआ है, कृपया मुझे आशीर्वाद देकर अपना शिष्य बना लें।'

साधु ने नवयुवक को इस भांति उत्सुक देखकर पूछा,—'वत्स ! तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?"

नवयुवक ने कहा—'महाराज ! मैं पास के गाँव से आया हूँ। मेरे पिता राजा निर्मोही हैं, मैं उन्हीं का पुत्र हूँ।"

साधु ने कहा—'राजा का पुत्र राजकुमार हूँ, ऐसा क्यों नहीं कहते। क्योंकि वही तुम्हारी योग्यता का परिचायक है। पर मुझे आश्चर्य होता है कि राजा और निर्मोही कैसे ? मैं जाकर देखना चाहता हूँ कि क्या नाम तथा गुण है या केवल नाम ही निर्मोही है। तुम बैठो, मैं अभी गाँव में पता लगा कर आता हूँ। फिर तुम जैसा कहोगे किया जायगा।"

साधु गाँव में जाकर सीधे राजमहल में चले गये। साधु को किसी ने नहीं रोका। महल के द्वार पर एक दासी को देखकर उन्होंने कहा—

'तू सुन दासी चतुर की, बात सुनाऊँ तोहि।
कुँवर बिनास्यो सिंह ने, आसो दइयो मोहि॥'

इस पर दासी ने उत्तर दिया—

कारण है कि अहिंसा का उनका महान् आदर्श प्रत्येक मानव के लिए कल्याणकारी था।

'गांधी जी ने कहा,…… …'अगर सत्य जीवन के सभी क्षेत्रों में और व्यवहारों में नहीं चल सकता तो वह कौड़ी कीमत की चीज नहीं है …..।'

जिसने राज्य को त्यागा, राजसी ऐश्वर्य को तिलांजलि दी, भरी जवानी में घरबार से मुंह मोड़ा, सारा वैभव छोड़कर अकिंचन बना और बारह वर्ष तक दुर्द्धर्ष तपस्या की, उसके आत्मिक बल की महत्ता की कल्पना नहीं की जा सकती। महावीर ने रात दिन अपने को तपाया और कंचन बने। उनकी अहिंसा वीरों का अस्त्र थी। दुर्बल व्यक्ति उसका उपयोग नहीं कर सकता था। जो मारने की सामर्थ्य रखता है, फिर भी मारता नहीं क्षमाशील रहता है, वही अहिंसा का पालन कर सकता है। यदि कोई चूहा कहे कि वह बिल्ली पर आक्रमण नहीं करेगा, उसने उसे क्षमा कर दिया है तो उसे अहिंसात्मक नहीं माना जा सकता। वह दिल में बिल्ली को कोसता है, पर उसमें दम ही नहीं कि उसका कुछ बिगाड़ सके। इसी से कहा है—"क्षमा वीरस्य भूषणम्" यही बात अहिंसा के विषय में कही जा सकती है। कायर या निर्बल व्यक्ति अहिंसक नहीं हो सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महावीर ने अहिंसा का व्यापक प्रचार-प्रसार किया और उसे धर्म का शक्तिशाली अंग बनाया। उस समय में पशु-यज्ञ आदि के रूप में घोर हिंसा होती थी। महावीर ने इसके विरुद्ध अपनी आवाज उठाई थी। उन्होंने लोगों में यह विश्वास पैदा किया कि हिंसा अमानवीय है। मनुष्य का स्वाभाविक धर्म अहिंसा है। इसी के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया और [illegible]

'हम लोगो के दिल मे इस झूठी मान्यता ने घर कर लिया है कि अहिसा व्यक्तिगत रूप से ही विकसित की जा सकती है और वह व्यक्ति तक ही मर्यादित है। वास्तव मे बात ऐसी नही है। अहिंसा सामाजिक धर्म है और वह सामाजिक धर्म के रूप मे विकसित की जा सकती है यह मनवाने का मेरा प्रयत्न और प्रयोग है।"

इतना ही नही उन्होने यहाँ तक कहा— 'अगर अहिंसा व्यक्तिगत गुण है तो वह मेरे लिए त्याज्य वस्तु है मेरी अहिंसा की कल्पना व्यापक है। वह करोडो की है। मै तो उसका सेवक हूँ जो चीज उनकी नही हो सकती है, वह मेरे लिए त्याज्य है और मेरे साथियो के लिए भी त्याज्य होनी चाहिए। हम तो यह सिद्ध करने के लिए पैदा हुए हैं कि सत्य और अहिंसा व्यक्तिगत आचार के ही नियम नही है, वे समुदाय राजनीति और राष्ट्र की नीति हो सकते है मेरा यह विश्वास है कि अहिंसा हमेशा के लिए है वह आत्मा का गुण है इसलिए वह व्यापक है क्योंकि आत्मा तो सभी मे होती है। अहिंसा सबके लिए है, सब जगहो के लिए है सब समय के लिए है। अगर वह वास्तव मे आत्मा का गुण है तो हमारे लिए वह सहज हो जाना चाहिए।"

लोगो ने कहा सत्य और अहिंसा व्यापार मे नही चल सकते है। राजनीति मे उनकी जगह नही हो सकती है। ऐसे व्यक्तियो को उत्तर देते हुए महात्मा गाधी जी ने कहा

"आज कहा जाता है कि सत्य व्यापार मे नही चलता, राजकारण मे नही चलता तो चलता फिर कहां है? **अगर सत्य जीवन के सभी क्षेत्रों मे और सभी व्यवहार मे नही चल सकता तो वह कौडी कीमत की चीज नही है।** जीवन मे उसका उपयोग क्या रहा? सत्य और अहिंसा कोई आसमानी चीज नही है। वे हमारे व्यवहार मे हो, राजनीति मे और हर जगह होने चाहिए।"

गांधी जी ने यह सब कहा ही नहीं, उस पर अमल करके भी दिखाया। प्राचीन काल से चली आती अहिंसा की परम्परा को आगे बढ़ाया, उसे नया मोड़ दिया। उन्होंने जहाँ वैयक्तिक जीवन में अहिंसा की प्रतिष्ठा की, वहाँ से सामाजिक तथा राजनैतिक कार्यों की आधार-शिला बनाया। अहिंसा के वैयक्तिक एवं सामूहिक प्रयोग के जितने दृष्टान्त हम गांधी जी के जीवन में मिलते हैं, उतने कदाचित किसी दूसरे महापुरुष के जीवन में नहीं मिलते।

हीरोशिमा और नागासाकी की कराह

पर दुर्भाग्य से हिंसा और अहिंसा की आँख मिचौनी आज भी चल रही है। गांधी जी ने अपने आत्मिक बल से अहिंसा को जो प्रतिष्ठा प्रदान की थी, वह अब क्षीण हो गई है। अहिंसा की तेजस्विता मन्द पड़ गई है, हिंसा का स्वर प्रखर हो गया है। इसी से हम देखते हैं कि आज चारों ओर हिंसा का बोलबाला है। विज्ञान की कृपा से नये-नये आविष्कार हो रहे हैं और शक्तिशाली राष्ट्रों की प्रभुता का आधार विनाशकारी आणविक अस्त्र बने हुए हैं। हीरोशिमा और नागासाकी के नर-संहार की कहानी और वहाँ के असंख्य पीड़ितों की कराह आज भी दिग्-दिगन्त में व्याप्त है, फिर भी राष्ट्रों की भौतिक महत्वाकांक्षा तथा अधिकार-लिप्सा तृप्त नहीं हो पा रही है। संहारक अस्त्रों का निर्माण तेजी से हो रहा है और उनका प्रयोग आज भी कुछ राष्ट्र बेधड़क कर रहे हैं।

लेकिन हम यह न भूलें कि अहिंसा की जड़ें बहुत गहरी हैं। उसे उखाड़ फेंकना सम्भव नहीं है। उसका विकास निरन्तर होता रहा है और अब भी उसकी प्रगति रुकेगी नहीं। हम दो विश्वयुद्ध देख चुके हैं और आज भी शीतयुद्ध की विभीषिका देख रहे हैं। चिन्तक और दार्शनिक लोग भी अनुभव कर रहे हैं कि यह अस्वाभाविक स्थिति अधिक समय तक चलने वाली नहीं है। समन्वय के साधकों ने दुनिया

को बहुत छोटा कर दिया है और छोटे-बड़े सभी राष्ट्र यह मानने लगे हैं कि उनका अस्तित्व युद्ध में नहीं, प्रेम से सुरक्षित रह सकता है। पर उनमें अभी इतना साहस नहीं है कि वर्ष में ३६४ दिन संहारक अस्त्रों का निर्माण करें और ३६५वें दिन उन सारे अस्त्रों को समुद्र में फेंक दें।

अहिंसा अब नये मोड़ पर खड़ी है और संकेत करके कह रही है कि विज्ञान के साथ आध्यात्म को जोड़ो और वैज्ञानिक आविष्कारों को रचनात्मक दिशा में मोड़ो।

जीवन का चरम लक्ष्य सुख और शान्ति से है। उसकी उपलब्धि संघर्ष से नहीं सद्भाव से होगी।

अहिंसा में निराशा को स्थान नहीं। वह जानती है कि उषा के आगमन से पूर्व रात्रि के अन्तिम प्रहर का अन्धकार गहनतम होता है। आज विश्व में जो कुछ हो रहा है, वह उस रात का सूचक है और शीघ्र ही नये युग का उदय होगा और संसार में यह विचार व्याप्त होगा कि मानव तथा मानव नीति से बढ़कर श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों वह दिन आयेगा जब राष्ट्र नया साहस पायेंगे और और भारत के सर्वोदय—तीर्थं तथा गांधी के राज्य की कल्पना को चरितार्थ करेंगे।

भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण

सभारोह की योजना एवं कार्य

(वृजकिशोर जैन, चिरगांव)

भारत की शस्य श्यामला धरती जिसकी मिट्टी मे महापुरुषो की सुगन्ध है, भारत का वह वायुमण्डल जिसमे महान दिव्य आत्माओ का वाणी ओज सम्मिश्रित है आज भी अपने अन्तर मे सैकडो विशिष्ट स्थान सजोये हुए है। लगता है पूरा भारत एक बहुत बडा उद्यान है और उसमे जगह-जगह सुरभित पुष्पो से आच्छादित गुल गुच्छ के रूप मे तीर्थंकर हुए है।

हिंसा को अहिंसा से जीतने के लिए, प्राणी मात्र को ईश्वर तक पहुँचाने के लिए भगवान महावीर २४वें तीर्थंकर के रूप मे अवतरित हुये थे।

१३ नवम्बर ७४ से १५ नवम्बर ७५ के बीच भगवान महावीर स्वामी निर्वाण की पच्चीसवी शताब्दी का पर्व मनाया जा रहा है। इस पर्व से भारत फिर विश्व को नया सन्देश देगा कि आत्मा की शान्ति परिग्रह से नही त्याग से है। इन्द्रियो का दमन संसार का सबसे बडा सुख है। संयम सबसे बडी औषधि है और सहन करने की शक्ति सबसे बडा सन्देश। इन्ही भावनाओ के प्रचार प्रसार निम्न योजनायें एवं कार्यक्रम बनाए गये है —

(८) भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान—अंग्रेजी, कन्नड और मराठी भाषा में अनुवाद हो रहा।

(९) प्रकाशित जैन साहित्य की बृहत् सूची—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी के अन्तर्गत श्री गुलाबचन्द जी एम० ए० कर रहे हैं।

(१०) भगवान महावीर का जीवन सन्देश—सभी भाषाओं में पुरातत्ववेत्ता डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये सम्पादन कर रहे हैं।

(११) प्राचीन मूर्तियों के चित्रों का एलबम और विवरण—इसमें ८०० वर्षों से पूर्व की जैन प्रतिमाओं का विवरण होगा।

(१२) भगवान महावीर-स्मृति ग्रन्थ (तीन खण्ड)—काका साहब कालेलकर एवं डा० सत्यप्रकाश, अम्टिम जी० ए० वैद्य आदि सम्पादन कर रहे हैं।

खण्ड (ख)

जैन भजनों, स्तुतियों आदि के २८ ग्रामोफोन रिकार्ड्स तैयार किये गये हैं। इनके लिये श्रमण जैन भजन प्रचारक संघ, जैन रेडियो कारपोरेशन, इटावा। अहिंसा मन्दिर, दिल्ली। जैन संस्कृति [illegible] केन्द्र, बम्बई का कार्य सराहनीय है।

महावीर भगवान के २५०० सौवें निर्वाण महोत्सव को सार्वजनिक रूप से राष्ट्रीय स्तर पर मनाने के लिए—

राष्ट्रीय समिति का गठन एवं कार्यक्रम

संरक्षक—श्री वी० वी० गिरि (राष्ट्रपति)
अध्यक्ष—श्रीमती इन्दिरा गांधी (प्रधान मंत्री)
कार्याध्यक्ष—शिक्षा मन्त्री, भारत सरकार।
विशिष्ट सदस्य—आचार्य श्री तुलसी जी, आचार्य श्री [illegible], आचार्य धर्मसागर जी म०, मुनि श्री [illegible] जी आदि।

सदस्य—प्रो० नूरुल हसन, शिक्षा राज्यमंत्री, भारत सरकार।
श्री [illegible] पी० [illegible], [illegible] राज्यमंत्री, भारत सरकार।

(ख) तत्वार्थ सूत्र का सभी भाषाओ मे अनुवाद ।

(ग) जैन विश्व-कोष ।

(७) भगवान महावीर का जीवन और उनके सिद्धान्त ।

(८) महोत्सव सम्बन्धी कार्यक्रमो का आयोजन (१३ नवम्बर सन् १९७४ से १५ नवम्बर सन् ७५ के बीच होगे ।)

आकाशवाणी, टेलीविजन, नेशनल म्यूजियम, डाकतार विभाग, यूनेस्को का विशेषांक, विश्वविद्यालयो मे गोष्ठियां, विदेशो मे गोष्ठियां, आदि का आयोजन, सूचना, गृह, डाकतार एवं शिक्षा मन्त्रालयो के सहयोग से होगे ।

आल इण्डिया दिगम्बर भगवान महावीर २५०० वां निर्वाण महोत्सव सोसाइटी [रजि०] के पदाधिकारियो की सूची

अध्यक्ष — सर्व श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन, नई दिल्ली-२१

प्रधानमन्त्री — ,, सुकुमार चन्द जैन, किशन फ्लोर मिल्स, मेरठ

मन्त्री — ,, कैलाशचन्द जैन, राजा टॉयज, दिल्ली-६

कोषाध्यक्ष — ,, प्रेमचन्द जैन, जैना वाच कं० दिल्ली ।

प्रबन्ध समिति के सदस्य (१) पूर्वांचल क्षेत्र, जिसमे मनीपुर आसाम, मेघालय, नागालैण्ड, बंगाल एवं बिहार है, मे प्रान्तीय एवं क्षेत्रीय समितियां बन गई हैं जो कि केन्द्रीय समिति के सदस्य हैं ।

(२) उत्तरांचल क्षेत्र के अन्तर्गत, दिल्ली प्रदेश, पंजाब, जम्मू कश्मीर हरियाणा, उत्तर प्रदेश है । यहां भी प्रान्तीय, क्षेत्रीय एवं स्थानीय समितियां महोत्सव के आयोजन के लिये हैं ।

(३) मध्यभारतांचल क्षेत्र के अन्तर्गत, मध्य-प्रदेश, राजस्थान तथा महाराष्ट्रांचल क्षेत्र के अन्तर्गत बम्बई, महाराष्ट्र प्रदेश एवं सौराष्ट्र क्षेत्र हैं । समितियां प्रान्तीय एवं क्षेत्रीय बन गई हैं ।

(४) दक्षिणांचल क्षेत्र के अन्तर्गत, मैसूर, केरल एवं आन्ध्र प्रदेश में भी प्रान्तीय एवं क्षेत्रीय समितियाँ निर्मित हो गई हैं।

इसी प्रकार प्रत्येक प्रान्त में भी भारत सरकार की ओर से शासकीय समितियाँ बनाई गई हैं। जिनके संरक्षक—राज्यपाल, अध्यक्ष—मुख्यमन्त्री, शिक्षा मन्त्री, शिक्षा सचिव एवं सभी क्षेत्रों के श्रेष्ठ विचारक कलाकार, साहित्य महारथी एवं शिक्षाविद् इन समितियों के सदस्य हैं।

'मुझको तो ऐसा लगता है,
धरती अधिक नहीं जीयेगी।
एटम बमों की ज्वालायें,
आखिर यह कितना पीयेगी॥
रण की भूख बहुत भीषण है,
चाँद सितारे तक खा जाये।
धरती कुछ दिन और जिये,
यदि कोई महावीर आ जाये॥'

डा० बलवीरसिंह 'करुण'

'श्री महावीर स्वामी दुनिया के महान प्रचारक और ऊँचे दर्जे के पैगम्बर हुए हैं। वे हमारी कौमी तारीख के कीमती रत्न हैं। तुम कहाँ और किन में धर्मात्मा प्राणियों की तलाश करते हो? इनको देखो, इनसे बेहतर साहिब कमाल तुमको कहाँ मिलेगा? इनका स्थान जिन है। ये तीर्थंकर हैं। परम हंस हैं।

—डा. एम. सैय्यद हाफिज
(कानपुर)

"हे ऋषभनाथ भगवन् ! उदर तृप्ति के लिये सोमरस के पिपासु मेरे उदर में मधुधारा सिंचन करो। आप अपने प्रजारूप पुत्रों को विषम संसार से तारने के लिए नावी के समान हो।"

—ऋग्वेद ३८/ अ० ७-३-३-११

'भो वृषभ देव आप उत्तम पूजक को लक्ष्मी देते हो। इस कारण मैं आपको नमस्कार करता हूँ और इस यज्ञ में पूजता हूँ।"

—४-१२२-५-२-२९

"जो मनुष्याकार अनन्त दान देने वाले और सर्वज्ञ अर्हन्त हैं वे अपनी पूजा करने वालों को देवों से पूजा कराते हैं।"

—अ० ४ अ० ३ वर्ग ९

"भो अर्हन्तदेव ! तुम धर्म रूपी बाणों को सदुपदेश रूप धनुष को, अनन्तज्ञानादि रूप आभूषणों को धारण करने वाले हो। भो अर्हन् ! आप जगत प्रकाशक केवलज्ञान को प्राप्त हो गये हो, ससार के जीवों के रक्षक हो, काम क्रोधादि शत्रु समूह के लिए भयंकर हो तथा आपके समान कोई अन्य बलवान नही है।"

—अ० २, अ० ७ व १७

"भाव यज्ञ (आत्मस्वरूप) को प्रकट करने वाले इस ससार के सब जीवों सब प्रकार से यथार्थ रूप से कहकर जो सर्वज्ञ नेमिनाथ स्वामी प्रकट करते है, जिनके उपदेश से जीवो की आत्मा पुष्ट होती है, उन नेमिनाथ तीर्थंकर के लिए आहुति समर्पण है।"

—यजुर्वेद अ० ५, मन्त्र २५

वेदो मे इसी प्रकार के और भी मन्त्र है।

अब हम विभिन्न पुराणो मे से कुछ श्लोको का हिन्दी अनुवाद दे रहे हैं।

"कैलाश पर्वत पर भगवान् आदिनाथ (भगवान ऋषभनाथ युग के आदि मे मुक्ति प्राप्त की तथा रैवत पर्वत (गिरनार)

जिनेन्द्र नेमिनाथ ने मुक्ति प्राप्त की। इसी कारण ये दोनो पर्वत ऋषियों के आश्रम बने और इसी कारण ये मुक्ति मार्ग के कारण माने गये है।"

—महाभारत

"अपना मनोवाञ्छित कार्य सिद्ध करने के लिये गिरनार पर आया और वामन ने भगवान नेमिनाथ का नाम नेमिनाथ शिव रखा।"

—स्कन्द पुराण, प्रभास खण्ड,
अध्याय १६, वस्त्रापथ क्षेत्र माहात्म्य

"रामचन्द्र जी कहते है कि मैं न तो राम हूँ, न मुझे कोई इच्छा है, न मेरा मन विषय भोगो मे लगता है। मैं तो जिन (जिनेन्द्र भगवान) के समान अपनी आत्मा मे ही शान्ति प्राप्त करना चाहता हूँ ॥८॥

—योग वशिष्ट

"अग्नीन्ध्र के पुत्र नाभि से ऋषभ नामक पुत्र हुआ। ऋषभ से भरत का जन्म हुआ, जो कि अपने सौ भाइयो मे बड़ा था ऋषभदेव ने अपने बडे पुत्र भरत का राज्याभिषेक करके स्वयं प्रव्रज्या (साधु-दीक्षा) ग्रहण की और तप करने लगे। भगवान ऋषभदेव ने भरत को हिमालय पर्वत से दक्षिण का राज्य दिया था, इस कारण उस महात्मा भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।"

मार्कण्डेय पुराण, अ० ५०—३९, ४०, ४१

'भगवान ऋषभदेव से वीर भरत का जन्म हुआ जो अन्य सौ पुत्रो से बड़ा था। भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।"

—वायु पुराण, अ० ३७—५२

"मारुदेवी माता से ऋषभ का जन्म हुआ। ऋषभ से भरत की उत्पत्ति हुई और भरत से इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ।"

—अग्नि पुराण, अ० १०—१२

"[illegible]
था। [illegible] नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष कहा जाता है।"

—नारद पुराण, अ० ४८-५

"[illegible] जी से उत्पन्न हुआ।
उस भरत से इस देश का नाम भारतवर्ष [illegible] है।"

—विष्णु पुराण, अंश २—अ० १-३२

"केवल ज्ञान द्वारा सर्वव्यापी, कल्याणस्वरूप, सर्वज्ञ, यह ऋषभनाथ जिनेश्वर मनोहर कैलाश पर्वत पर उतरे ॥५९॥"

—शिव पुराण

"नाभिराजा ने मरुदेवी महारानी से मनोहर, क्षत्रियों में प्रधान और समस्त क्षत्रिय वंश का पूर्वज ऐसा ऋषभ नामक पुत्र उत्पन्न किया। ऋषभनाथ से शूरवीर सौ भाइयों में सबसे बड़ा ऐसा भरत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऋषभनाथ उस भरत का राज्याभिषेक करके स्वयं दिगम्बर दीक्षा लेकर मुनि हो गये। इसी आर्य भूमि में इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न नाभिराजा तथा मरुदेवी के पुत्र ऋषभनाथ ने क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य यह दस प्रकार का धर्म स्वयं धारण किया और केवल ज्ञान पाकर उन धर्मों का प्रचार किया।"

—ब्रह्माण्ड पुराण, ५९, ६०

'प्रत्येक युग में द्वारकापुरी बहुत पुण्यवती दृष्टिगोचर होती है, जहाँ पर चन्द्र के समान मनोहर नारायण जन्म लेते हैं। पवित्र रैवताचल (गिरनार पर्वत) पर नेमिनाथ जिनेश्वर हुए, जो कि ऋषियों के आश्रय और मोक्ष के कारण थे।"

(प्रभास पुराण)

"शत्रुञ्जय तीर्थ का स्पर्श करके, गिरनार पर्वत को नमस्कार करके, और गजपन्था के कुण्ड में स्नान कर लेने पर फिर जन्म नहीं

लेना पड़ता अर्थात मुक्ति हो जाती है। ऋषभनाथ सर्वज्ञाता, सर्वदृष्टा और समस्त देवो से पूजित हैं। उन निरञ्जन, निराकार, परमात्मा, केवलज्ञानी, तीन छत्र युक्त, पूज्य मूर्ति धारक, महाऋषि, ऋषभनाथ के चरण युगल को हाथ जोडकर हृदय से आदित्य आदि सुर, नर ध्यान करते हैं।"

(स्कन्द पुराण)

(नोट—शत्रुञ्जय, गिरनार व गजपन्था ये तीनों स्थान जैनियों के तीर्थ क्षेत्र हैं।)

"जो फल इन तीर्थों की यात्रा करने से होता है वह फल आदिनाथ भगवान के स्मरण करने से होता है।"

(नाग पुराण)

(ऋषभनाथ भगवान को प्रथम तीर्थङ्कर होने के कारण आदिनाथ भी कहते हैं।)

प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभनाथ को आठवा अवतार बतलाकर भागवत पुराण के पांचवें स्कन्ध के चौथे, पांचवें और छठे अध्याय में इनका बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है।

इसके अतिरिक्त मोहनजोदारो एवं हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त पांच हजार वर्ष पुरानी मुद्रों पर भगवान ऋषभदेव की मूर्ति तथा 'नमो जिनेश्वराय' आदि वाक्य अंकित है।

ऊपर लिखित बातों से यह प्रमाणित हो जाता है कि जैन धर्म और उसके प्रचारक तीर्थङ्कर वेदों व पुराणों की रचना काल से भी अत्यन्त प्राचीन है।

कुछ इतिहासकार तो जैन धर्म को इस संसार का सबसे प्राचीन धर्म और भगवान ऋषभनाथ को इस युग में सर्वप्रथम धर्म प्रचारक के रूप में स्वीकार करते हैं।

जैन धर्म अनादि काल से चला आ रहा है। हम यदि वर्तमान समय तक प्राप्त इतिहास की ओर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि

जहां तक भारत की ऐतिहासिक सामग्री मिलती है वहां तक जैन धर्म पाया जाता है। यह बात उपरोक्त प्रमाणों से तो स्पष्ट है ही निम्न-लिखित श्रेष्ठ अंग्रेज इतिहासज्ञों के प्रामाणिक लेखों से और भी स्पष्ट हो जाती है।

मेजर जनरल्ल फर्लांग महोदय अपनी पुस्तक 'In his short studies of Comparative religions P. P. 213-41' में कहते हैं :—

All Upper, Western, North & Central India was, then say, 1500 to 800 B. C and indeed from unknown times, ruled by Turanians, Conveniently called Dravids, and given to tree, serpent and the like worship ...... but there also existed through out Upper India an ancient & highly organised religion, philosophical, ethical & severely ascentical viz JAINISM

भावार्थ—ई० पू० ८०० से १५०० वर्ष पहिले तक तथा वास्तव में अज्ञात समयों से यह कुल भारत तूरानी या द्राविड लोगों द्वारा शासित था, जो वृक्ष, सर्प आदि की पूजा करते थे, किन्तु उसी समय उत्तरी भारत में एक अति प्राचीन उत्तम रीति से संगठित हुआ धर्म तत्वज्ञान से पूर्ण सदाचार युक्त तथा कठिन तपस्या सहित धर्म जैनधर्म मौजूद था।

पेरिस (फ्रांस) के उच्च-कोटि के विद्वान 'डाक्टर ए० गिरिनाट' महोदय ने ३ दिसम्बर १९११ को अपने शोध में लिखा है :—

'Concerning the antiquity of Jainism Comparatively to Budhism, the farmar is truly more

ancient than the later. There is very great ethical value in Jainism for mens improvement. Jainism is a very original, Independent & Systematical doctrine.

भावार्थ—बौद्धधर्म से जैनधर्म की प्राचीनता की तुलना करते हुए कहते हैं कि ठीक है कि 'जैन-मत' 'बौद्धधर्म से वास्तव मे बहुत प्राचीन है। मानव समाज की उन्नति के लिये 'जैनमत' मे सदाचार का बहुत बडा मूल्य है। जैनधर्म बहुत ही असली, स्वतन्त्र और नियमित सिद्धान्त है।

जर्मनी के महान् विद्वान डाक्टर जोह्नसहर्टल (Dr. Johannes Hertel M. A., Ph D.) लेख में लिखते है :—

'मैं अपने देशवासियो को दिखलाऊँगा कि कैसे उत्तम तत्त्व और विचार 'जैनधर्म' और 'जैनग्रन्थों' मे हैं। जैनसाहित्य बौद्धो की अपेक्षा बहुत ही उत्तम है। मै जितना २ अधिक जैन धर्म व जैन-साहित्य का ज्ञान प्राप्त करता जाता हूँ, उतना २ ही मैं उनको अधिक प्यार करता हूँ।'

अब यह बात उपरोक्त तथ्यो के प्रकाश से बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि जैन धर्म अनादि एव अनन्त है जिसका ऐतिहासिक दृष्टि से भी मूल्यांकन हो चुका है।

कलाकृतियाँ और चित्र अकित है, इसमे शान्तिनाथ भगवान की १२ फुट उत्तग जिन प्रतिमा विराजमान है। जो दर्शक को अपनी ओर आकृष्ट करती है। चारो कोनो पर अम्बिका देवी की चार मूर्तियाँ हैं। जो मूर्तिकला के गुणो से पूर्णत. समन्वित है। इस मन्दिर की बाहरी दीवाल पर २४ यक्ष-यक्षिणियो की सुन्दर कला-कृतियाँ बनी हुई हैं। जिनकी आकृतियो से भव्यता टपकती है। साथ ही १८ लिपियो वाला लेख भी बरामदे मे उत्कीर्णित है। यह देवगढ की महत्वपूर्ण देन है। देवगढ के जैन मन्दिरो का निर्माण आर्य नागर शैली मे हुआ है। देवगढ मे उक्त शैली का विकास पाया ही जाता है, किन्तु खजुराहो आदि के जैन मन्दिरो मे भी इसी कला का विकास दृष्टिगोचर होता है।

मालूम होता है कि इस युग मे साम्प्रदायिक विद्वेष नही था और न ही धर्मान्धता थी। इसी से इस युग मे भारतीय कला का जैनो, वैष्णवो और शैवो मे निर्विरोध विकास हुआ है। प्रस्तुत देवगढ जैन और हिन्दू सस्कृति का सम्मिलन रहा है। तीर्थंकर-मूर्तियाँ, सरस्वती की मूर्ति, पच परमेष्ठियो की मूर्तियाँ कलापूर्ण मान स्तम्भ, अनेक शिलालेख और पौराणिक दृश्य अङ्कित है। साथ ही वाराह का मन्दिर, गुफा मे शिव-लिंग, [illegible] मुद्रा गणेश मूर्ति [illegible] शायी विष्णु की मूर्ति, [illegible] की मूर्ति, एव महाभारत रामायण के पौराणिक दृश्य और [illegible] आदि कलात्मक सामग्री देवगढ की महत्ता का द्योतक है। इस सम्बन्ध मे 'सरसजी' के विचार —

[illegible] चित्त को [illegible] यहाँ पर, ऐसी [illegible] रेखा है।
बिना 'देवगढ' देखे [illegible] सब कुछ अनदेखा है॥'

— ० —

'हे वीर वाणी के पथिक'

(श्री विचित्र प्रकाश जैन, देहली)

हे आर्य कुल के धन्य मानव, वीर वाणी के पथिक।
क्यो हो रहे हो भ्रष्ट पथ से, हो रहे हो क्यो थकित॥
करुणा क्षमा एव अहिंसा, के तुम्ही आधार हो।
इन दीन हीनो के लिये, अवतार हो दातार हो॥

चीटीं की रक्षा के लिये भी, तुम सदा तत्पर रहे।
दूसरो के दुख मे, निज दुख भी तुमने सहे॥
जहर खा लोगे मगर, आमिप नही मुख मे धरो।
धन्य हो हे विश्व के, शिरमौर धरती के सुरो॥

किन्तु काल प्रदोप से आया विकार महान है।
घोर हण्डा सर्पिणी की रौद्रता मप्रमाण है॥
मूक पशु की हड्डियो पर चर्म भी उसका नही।
रहने नही पाता है प्रिय कारण तो है इसके हमी॥

आज फैशनभूत शिर चढ बोलता है शाप से।
बस यही कारण, हुये जिससे बने भागी पाप के॥
दीन पशु का रक्त बहता है, हमारे भी लिये।
करुणा क्रन्दन वधिक सम्मुख, है हमारे भी लिये॥

उदरस्थ पशु के शिशु तडपते आज मानव के लिये।
भ्रूण हत्या हो रही है आज मानव के लिये॥
उनकी उतरती खाल, मित्रो। आज मानव के लिये।
होता महान कुकृत्य प्रियवर आज मानव के लिये॥

चर्मधारी, अमिषहारी है बराबर रूप से।
कारण महा इस पाप के, पशु वध घातक कृत्य के॥
क्योंकि केवल अमिष हेतु पशु न मारा जा रहा।
चर्म के प्राप्त्यार्थ भी उसको सहारा जा रहा॥

हाय! मोनो हाथ मे हथियार लेकर जब वधिक।
आता निर्बलपशु दीन सम्मुख, निंद्य क्या इससे अधिक॥
त्रैलोक्य नाथ महान तीर्थंकर श्री महावीर के।
अनुगमन कर्ता हो गये क्यों भ्रष्ट मार्ग पथिक के॥

बन्धुओ, ये चर्म छोडो, चर्म मे नही धर्म है।
अन्याय अत्याचार है, इस सम नही दुष्कर्म है॥
चर्मधारी व्यक्ति के, उपवास व्रत निष्फल सदा।
करुणा करो अरु त्याज्य समझो चर्म वस्तु सर्वदा॥

स्थान इस संसार मे सबसे बड़ा है अभय का।
भयभीत नहि हो जीव कोई धर्म है यह मनुज का॥
पशु जाति के प्रति हो रहे, अन्याय का अपकर्ष हो।
धन धान्य से घृत—दुग्ध से, परिपूर्ण भारतवर्ष हो॥

'जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित रे अति सुख से।
मानव - जग में बट जावें,
दुख सुख से औ सुख दुख से।'

—पन्त जी

मूर्ति पूजा क्यों ?

(बृजकिशोर जैन, एम० ए०, चिरगाँव)

कभी-कभी मैं सोचता हूँ और इसी प्रकार अनको भाइयों के सामने यह प्रश्न आता रहता है कि जैन मूर्ति पूजा क्यो करते हैं ? और यदि पूजा करते हैं तो वह दिगम्बर भेष धारी (वस्त्र हीन) मूर्तियो की ही पूजा एव उपासना क्यो करते हैं ?

जैन लोग जो परमात्मा की भक्ति व पूजा वन्दना करते हैं वह मात्र इसीलिये कि अपने भावो को निर्मल किया जावे, न कि इसलिये कि परमात्मा को प्रसन्न किया जावे।

हमारे दिल पर बाहर की चीजें कुछ न कुछ अपना प्रभाव डाला करती हैं, अच्छी चीजें अच्छा प्रभाव डालती हैं और बुरी चीजो का प्रभाव चित्त पर बुरा पड़ा करता है। चित्र, मिट्टी, पत्थर, पीतल, चाँदी एव सोना आदि की बनी हुई मूर्तियाँ भी अपने-अपने रूप के अनुसार देखने वाले स्त्री पुरुषो के ही नहीं किन्तु छोटे छोटे बच्चो के चित्त पर अच्छा या बुरा प्रभाव डाला करती हैं। यही कारण है कि जो मनुष्य जिस विचार का होता है वह अपने घर मे वैसी ही तस्वीरें लगाया करता है। गर्भिणी स्त्री को सुन्दर दृश्य एव चित्र देखने के लिये इसीलिये शास्त्रो मे विधान है कि उन अच्छे चित्रो का देखने से गर्भस्थ शिशु के रूप, गुण, चरित्र पर अच्छा प्रभाव होता है।

इसी प्रयोजन से जैन धर्म मे मूर्ति पूजा का विधान है। मूर्ति जड़ है, पत्थर, पीतल आदि की है किन्तु उस जीवन्मुक्त महामानव परमात्मा की स्मृति है जिसने अपने पवित्र उपदेश और सर्वोच्च चरित्र से संसार में शान्ति का स्रोत प्रवाहित किया है। सांसारिक पदार्थों से मोह भाव छोड़कर जिसने अपने आत्मा को शुद्ध किया था। ऐसी मूर्ति द्वारा हम

भगवान महावीर एक कदम आगे बढ़े—उन्होंने सबके कल्याण की कल्पना की और अहिंसा को परम धर्म मानकर प्रत्येक प्राणी के लिए अनिवार्य ठहराया। उन्होंने कहा—

सव्वे पाणा पिया उया, सुहसाया,
दुक्खपडिकूलताअप्पियकहा।
पिय जीवणो जीपि उकामा,
(तम्हा) णातिवाएज्ज किंचणं॥

अर्थात् सब प्राणियों को आयु प्रिय है, सब सुख के अभिलाषी हैं, दुःख सबके प्रतिकूल है, वध सबको अप्रिय है, सब जीने की इच्छा रखते हैं, इससे किसी को मारना अथवा कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए।

हम देखते हैं कि महावीर से पहले भी अनेक धर्मप्रवर्तकों तथा महापुरुषों ने अहिंसा के महत्त्व एवं उसकी उपादेयता पर प्रकाश डाला था, लेकिन महावीर ने अहिंसा तत्त्व की जितनी विस्तृत, सूक्ष्म तथा गहन मीमांसा की, उतनी शायद ही और किसी ने की हो। उन्होंने अहिंसा को अठारह गुण—स्थानों में प्रथम स्थान पर रखा और उस तत्त्व को चरम सीमा तक पहुँचा दिया। कहना होगा कि उन्होंने अहिंसा को सैद्धान्तिक भूमिका पर ही खड़ा नहीं किया, उसे आचरण का आधार भी बनाया। उनका कथन था—

सयं तिवायए पाणे, अदुवन्नेहिं घायए।
हणंतं वाणुजाणाइ, वेरं वड्ढइ अप्पणो॥

अर्थात् जो मनुष्य प्राणियों की स्वयं हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है और हिंसा करने वालों का अनुमोदन करता है, वह संसार में अशान्ति वैर को बढ़ाता है।

अहिंसा की व्याख्या करते हुए वह कहते हैं—

तेसिं अच्छण जोएव, निच्चं होयव्वयं सिया।
मणसा कायवक्केण एव हवइ संजए॥

मन, वचन और काया, इनमें से किसी एक के द्वारा भी किसी प्रकार के जीवों की हिंसा न हो, ऐसा व्यवहार ही संयमी जीवन है। ऐसे जीवन का निरन्तर धारण ही अहिंसा है।

'जियो और जीने दो' की बात—

सब जीवों के प्रति आत्मभाव रखने, किसी को त्रास न पहुंचाने, किसी के भी प्रति वैर-विरोध-भाव न रखने, अपने धर्म के प्रति सदा विवेकशील रहने, निर्भय बनने, दूसरों को अभय देने, आदि-आदि बातों पर महावीर ने विशेष बल दिया जो स्वाभाविक ही था। मानव-जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाने और समाज में फैली नाना प्रकार की व्याधियों को दूर करके उसे स्थायी सुख और शांति प्रदान करने के अभिलाषी महावीर ने समस्त चराचर प्राणियों के बीच समता स्थापन और उन्हें एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया। उनका सिद्धान्त था "जियो और जीने दो" अर्थात यदि तुम चाहते हो कि सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो तो उसके लिए आवश्यक है कि दूसरों को भी इसी प्रकार जीने का अवसर दो। उन्होंने समष्टि के हित में व्यष्टि के हित को समाविष्ट कर देने की प्रेरणा दी। वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन को विकृत करने वाली बुराइयों की ओर उनका ध्यान गया और उन्हें दूर करने के लिए उन्होंने मार्ग सुझाया।

महावीर की अहिंसा—प्रेम के व्यापक विस्तार में से उपजी थी। उनका प्रेम असीम था। वह केवल मनुष्य जाति को प्रेम नहीं करते थे, उनकी करुणा समस्त जीवधारियों तक व्याप्त थी। छोटे-बड़े, ऊंच-नीच आदि के भेदभाव को उनके प्रेम ने कभी स्वीकार नहीं किया। यही